३. कर्मयोग

अर्जुन बोले— हे जनार्दन, यदि आप कर्म से ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं, तो फिर, हे केशव, आप मुझे इस भयंकर कर्म में क्यों लगा रहे हैं? आप मिश्रित वचनों से मेरी बुद्धि को भ्रमित कर रहे हैं. अतः आप उस एक बात को निश्चितरूप से कहिए, जिससे मेरा कल्याण हो. (३.०१-०२)

श्रीभगवान बोले— हे निष्पाप अर्जुन, इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है. जिनकी रुचि ज्ञान में लगती है, उनकी निष्ठा ज्ञानयोग से और कर्म में रुचि वालों की निष्ठा कर्मयोग से होती है. (३.०३)

मनुष्य कर्म का त्यागकर कर्म के बन्धनों से मुक्त नहीं होता. केवल कर्म के त्याग मात्र से ही सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती. (३.०४)

कोई भी मनुष्य एक क्षण भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता, क्योंकि प्रकृति के गुणों द्वारा मनुष्यों से — परवश की तरह — सभी कर्म करवा लिए जाते हैं. (३.०५)

जो मूढ़ बुद्धि मनुष्य इन्द्रियों को (प्रदर्शन के लिए) रोककर मन द्वारा विषयों का चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी कहा जाता है. (३.०६)

परन्तु हे अर्जुन, जो मनुष्य बुद्धि द्वारा अपने इन्द्रियों को वश में करके, अनासक्त होकर कर्मेन्द्रियों द्वारा निष्काम कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है. (३.०७)

तुम अपने कर्तव्य का पालन करो, क्योंकि कर्म न करने से कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरे शरीर का निर्वाह भी नहीं होगा. (३.०८)

केवल अपने लिए कर्म करने से मनुष्य कर्मबन्धन से बन्ध जाता है; इसलिए हे अर्जुन, कर्मफल की आसक्ति त्यागकर सेवाभाव से भलीभांति अपना कर्तव्यकर्म का पालन करो. (३.०९)

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में यज्ञ (अर्थात् निस्वार्थ सेवा) के साथ प्रजा का निर्माणकर कहा— "इस यज्ञ द्वारा तुम लोग वृद्धि प्राप्त करो और यह यज्ञ तुम लोगों को इष्टफल देने वाला हो." (३.१०)

तुम लोग यज्ञ के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और देवगण तुम लोगों को उन्नत करें. इस प्रकार एक दूसरे को उन्नत करते हुए तुम परम कल्याण को प्राप्त होगे. (३.११)

यज्ञ द्वारा पोषित देवगण तुम्हें इष्टफल प्रदान करेंगे. देवताओं के द्वारा दिए हुए भोगों को जो मनुष्य उन्हें बिना दिए अकेला सेवन करता है, वह निश्चय ही चोर है. (३.१२)

यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाते हैं; परन्तु जो लोग केवल अपने लिए ही अन्न पकाते हैं, वे पाप के भागी होते हैं. (ऋ.वे. १०.११७.०६ भी देखें) (३.१३)

समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न वृष्टि से होता है, वृष्टि यज्ञ से होती है, यज्ञ कर्म से, कर्म वेदों में विहित है और वेद को अविनाशी ब्रह्म से उत्पन्न हुआ जानो. इस तरह सर्वव्यापी ब्रह्म सदा ही यज्ञ (अर्थात् सेवा) में प्रतिष्ठित है. (४.३२ भी देखें) (३.१४-१५)

हे पार्थ, जो मनुष्य सेवा द्वारा इस सृष्टिचक्र को चलते रहने में सहयोग नहीं देता है, वैसा पापमय, भोगी मनुष्य व्यर्थ ही जीता है. (३.१६)

परन्तु जो मनुष्य परमात्मा में ही रमण करता है तथा परमात्मा में ही तृप्त और संतुष्ट रहता है, वैसे आत्मज्ञानी मनुष्य के लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता. (३.१७)

उसे कर्म करने से या न करने से कोई प्रयोजन नहीं रहता तथा वह (परमात्मा के सिवा) किसी और प्राणी पर आश्रित नहीं रहता. (३.१८)

इसलिए तुम अनासक्त होकर सदा अपने कर्तव्यकर्म का भलीभांति पालन करो, क्योंकि अनासक्त रहकर कर्म करने से ही मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करता है. (३.१९)

राजा जनक आदि ज्ञानीजन निष्काम कर्मयोग द्वारा परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे. लोक कल्याण के लिए भी तुम्हारा कर्म करना ही उचित है. (३.२०)

श्रेष्ठ मनुष्य जैसा आचरण करता है, दूसरे लोग भी वैसा ही आचरण करते हैं. वह जो प्रमाण देता है, जन समुदाय उसी का अनुसरण करते हैं. (३.२१)

हे पार्थ, तीनों लोकों में न तो मेरा कोई कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु मुझे अप्राप्त है, फिर भी मैं कर्म करता हूं. (३.२२)

क्योंकि यदि मैं सावधान होकर कर्म न करूं तो हे पार्थ, मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण करेंगे. इसलिए यदि मैं कर्म न करूं, तो ये सब लोक नष्ट हो जायेंगे और मैं ही इनके विनाश का तथा अराजकता का कारण बनूंगा. (३.२३-२४)

हे भारत, अज्ञानी लोग जिस प्रकार कर्मफल में आसक्त होकर भलीभांति अपना कर्म करते हैं, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य भी जनकल्याण हेतु आसक्तिरहित होकर भलीभांति अपना कर्म करें. (३.२५)

ज्ञानी कर्मफल में आसक्त अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम अर्थात् कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे तथा स्वयं (अनासक्त होकर) समस्त कर्मों को भलीभांति करता हुआ दूसरों को भी वैसा ही करने की प्रेरणा दे. (३.२९ भी देखें) (३.२६)

वास्तव में संसार के सारे कार्य प्रकृति मां के गुणरूपी परमेश्वर की शक्ति के द्वारा ही किए जाते हैं, परन्तु अज्ञानवश मनुष्य अपने आपको ही कर्ता समझ लेता है (तथा कर्मफल की आसक्तिरूपी बन्धनों से बन्ध जाता है. मनुष्य तो परम शक्ति के हाथ की केवल एक कठपुतली मात्र है). (५.०९, १३.२९, १४.१९ भी देखें) (३.२७)

परन्तु हे महाबाहो, गुण और कर्म के रहस्य को जानने वाले ज्ञानी मनुष्य ऐसा समझकर — कि (इन्द्रियों द्वारा) प्रकृति के गुण ही सारे कर्म करते हैं (तथा मनुष्य कुछ भी नहीं करता है) — कर्म में आसक्त नहीं होते. (३.२८)

प्रकृति के गुणों द्वारा मोहित होकर अज्ञानी मनुष्य गुणों के (द्वारा किए गये) कर्मों में आसक्त रहते हैं, उन्हें ज्ञानी मनुष्य सकाम कर्ममार्ग से विचलित न करें. (३.२६ भी देखें) (३.२९)

मुझ में चित्त लगाकर, सम्पूर्ण कर्मों (के फल) को मुझ में अर्पण करके, आशा, ममता और संतापरहित होकर अपना कर्तव्य (युद्ध) करो. (३.३०)

जो मनुष्य बिना आलोचना किये, श्रद्धा पूर्वक मेरे इस उपदेश का सदा पालन करते हैं, वे कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं; परन्तु जो आलोचक मेरे इस उपदेश का पालन नहीं करते, उन्हें अज्ञानी, विवेकहीन तथा खोया हुआ समझना चाहिए. (३.३१-३२)

सभी प्राणी अपने स्वभाव-वश ही कर्म करते हैं. ज्ञानी भी अपनी प्रकृति के अनुसार ही कार्य करता है. फिर इन्द्रियों के निग्रह का क्या प्रयोजन है? (३.३३)

प्रत्येक इन्द्रिय के भोग में राग और द्वेष, मनुष्य के कल्याण मार्ग में विघ्न डालने वाले, दो महान् शत्रु रहते हैं. इसलिए मनुष्य को राग और द्वेष के वश में नहीं होना चाहिए. (३.३४)

अपना गुणरहित सहज और स्वाभाविक कार्य आत्मविकास के लिए दूसरे अच्छे अस्वाभाविक कार्य से श्रेयस्कर है. स्वधर्म कार्य में मरना भी कल्याणकारक है. अस्वाभाविक कार्य हानिकारक होता है. (१८.४७ भी देखें) (३.३५)

अर्जुन बोले— हे कृष्ण, न चाहते हुए भी बलपूर्वक बाध्य किए हुए के समान किससे प्रेरित होकर मनुष्य पाप का आचरण करता है? (३.३६)

श्रीभगवान बोले— रजो गुण से उत्पन्न यह काम है, यही क्रोध है, कभी भी पूर्ण नहीं होने वाले इस महापापी काम को ही तुम (अध्यात्मिक मार्ग का) शत्रु जानो. (३.३७)

जैसे धुएं से अग्नि और धूलि से दर्पण ढक जाता है तथा जेर से गर्भ ढका रहता है, वैसे ही काम आत्मज्ञान को ढक देता है. (३.३८)

हे कौन्तेय (अर्जुन), अग्नि के समान कभी तृप्त न होने वाले, ज्ञानियों के नित्य शत्रु, काम, के द्वारा ज्ञान ढक जाता है. (३.३९)

इन्द्रियां, मन और बुद्धि काम के निवास स्थान कहे जाते हैं. यह काम इन्द्रियां, मन और बुद्धि को अपने वश में करके ज्ञान को ढककर मनुष्य को भटका देता है. (३.४०)

इसलिए हे अर्जुन, तुम पहले अपनी इन्द्रियों को वश में करके, ज्ञान और विवेक के नाशक इस पापी कामरूपी शत्रु का विनाश करो. (३.४१)

इन्द्रियां शरीर से श्रेष्ठ कही जाती हैं, इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है और आत्मा बुद्धि से भी अत्यन्त श्रेष्ठ है. (कठो.उ. ३.१० तथा गीता ६.०७-०८ भी देखें) (३.४२)

इस प्रकार आत्मा को मन और बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर, (सेवा, ध्यान, पूजन आदि से की हुई शुद्ध) बुद्धि द्वारा मन को वश में करके, हे महाबाहो, तुम इस दुर्जय कामरूपी शत्रु का विनाश करो. (कठो.उ. ३.०३-०६ भी देखें) (३.४३)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥